



प्रकाशनार्थ स्वीकृत

2025:AHC-LKO: 9248

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

लखनऊ

रिट सी संख्या 107 वर्ष 2026

अनिल कुमार

.....याचिकाकर्ता(गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य, प्रमुख सचिव, पंचायत राज विभाग, लखनऊ के माध्यम से एवं 3 अन्य

.....प्रत्यर्थी(गण)

याचिकाकर्ता(गण) के अधिवक्ता

: प्रभात कुमार, लल्ला जी मौर्या

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता

: मुख्य स्थायी अधिवक्ता, नरसिंह, सतीश कुमार
शर्मा

न्यायालय संख्या-17

माननीय न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी

1. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता श्री प्रभात कुमार अधिवक्ता, और उत्तर प्रदेश राज्य के लिए विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री राहुल शुक्ला तथा विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता श्री अनुराग शुक्ला वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनके साथ श्री अमन द्विवेदी अधिवक्ता हैं, को सुना गया।

2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत दाखिल की गई इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता ने जिला पंचायत राज अधिकारी, सीतापुर द्वारा पारित आदेश दिनांक 26.06.2025 की वैधता को चुनौती दिया है, जिसके द्वारा जिला पंचायत राज अधिकारी ने विपक्षी संख्या 4 को अगले आदेशों तक, या प्रधान नियुक्त होने तक, ग्राम पंचायत, सिकौहा, विकास खंड रेउसा, जिला सीतापुर के ग्राम प्रधान के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए नामित किया है, क्योंकि 06.06.2025 को ग्राम प्रधान ओरी लाल की मृत्यु के परिणामस्वरूप यह पद रिक्त हो गया था।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



3. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया है कि प्रश्नागत ग्राम प्रधान का पद अन्य पिछड़ा वर्ग श्रेणी से संबंधित व्यक्तियों के लिए आरक्षित है, जबकि विपक्षी संख्या 4 उस श्रेणी से संबंधित व्यक्ति नहीं है। याचिकाकर्ता ग्राम पंचायत का एक सदस्य है और वह अन्य पिछड़ा वर्ग श्रेणी से संबंधित है, और उसे स्थानापन्न ग्राम प्रधान के रूप में नामित किया जाना चाहिए था।

4. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने आगे यह तर्क प्रस्तुत किया है कि यह नियुक्ति पंचायत के सदस्यों की सहमति प्राप्त किए बिना की गई है। इस संबंध में, उन्होंने **सावित्री देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और 4 अन्य**: 2017:एचसी:70818 के वाद में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ द्वारा पारित निर्णय दिनांक 19.05.2017 पर भरोसा किया है, जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि नियमित चुनाव द्वारा रिक्ति भरे जाने तक ग्राम प्रधान के रूप में कार्य करने के लिए एक उपयुक्त सदस्य के नामांकन हेतु अंतिम निर्णय लेने से पहले जिलाधिकारी के लिए ग्राम पंचायत के सदस्यों की राय लेना अनिवार्य है।

5. विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता श्री एस.के. खरे ने दिनांक 24.09.2025 के लिखित निर्देशों के आधार पर रिट याचिका का विरोध किया है और उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया है कि उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-जे में यह प्रावधान नहीं है कि स्थानापन्न प्रधान की नियुक्ति करते समय भी आरक्षण के प्रावधान का पालन किया जाएगा। श्री खरे को दिनांक 06.10.2025 के अनुपूरक निर्देश भी प्राप्त हुए हैं, जिनमें यह सूचित किया गया है कि विपक्षी संख्या 4 को स्थानापन्न प्रधान के रूप में नियुक्त करने से पूर्व, ग्राम पंचायत सदस्यों की सहमति प्राप्त नहीं की गई थी।

6. विपक्षी संख्या 4 की ओर से उपस्थित वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनुराग शुक्ला ने रिट याचिका का पुरजोर विरोध किया है और उन्होंने भी यह तर्क प्रस्तुत किया है कि उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम, 1947 की धारा 12-जे में यह प्रावधान नहीं है कि स्थानापन्न प्रधान की नियुक्ति करते समय भी आरक्षण के प्रावधान का पालन किया जाएगा और यह कि किसी भी आकस्मिक रिक्ति के स्थिति में ग्राम प्रधान के कर्तव्यों का पालन करने के लिए किसी भी व्यक्ति को नामित करने से पहले ग्राम पंचायत के सदस्यों की सहमति प्राप्त करने की कोई वैधानिक आवश्यकता नहीं है। अपने तर्कों के समर्थन में, विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता ने **उदयवीर बनाम राज्य निर्वाचन आयोग उत्तर प्रदेश**: 2008 एससीसी आनलाइन इला 2132, **पुष्पेन्द्र कुमार**

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2010 एससीसी आनलाइन इला 3140, श्यामू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य, 2010 एससीसी आनलाइन इला 1250, श्रीमती उषा सिंह बनाम जिलाधिकारी, गोरखपुर व अन्य, 1992 आरडी 337 = 1992 एससीसी आनलाइन इला 184 के वादों में दिए गए निर्णयों पर भरोसा किया है।

7. श्रीमती उषा सिंह बनाम जिलाधिकारी, गोरखपुर व अन्य (उपर्युक्त) में, इस न्यायालय की एक एकल न्यायाधीश पीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि: -

"7. ... शाब्दिक रूप से व्याख्या किए जाने पर उक्त प्रावधान विहित प्राधिकारी को इस प्रयोजन के लिए ग्राम पंचायत के किसी भी सदस्य को नामित करने का पूर्ण विवेक प्रदान करता है। हालांकि, ऐसी व्याख्या इस प्रावधान को मनमाना और असंवैधानिक भी बना देगी क्योंकि इस संबंध में कोई मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित नहीं किया गया है कि विहित प्राधिकारी के विवेक का प्रयोग कैसे किया जाना चाहिए और ग्राम पंचायत के किस सदस्य के पक्ष में किया जाना चाहिए...."

ऐसा अवलोकन करने के पश्चात, विद्वान एकल न्यायाधीश ने फिर इस प्रकार अभिनिर्धारित किया: -

"... मेरी राय में, चूंकि ग्राम सभा और ग्राम पंचायत जनता द्वारा निर्वाचित लोकतांत्रिक निकाय हैं, अतः धारा 12-जे की उपधारा (2) की उचित व्याख्या यह होगी कि ऐसे मामले में जहां प्रधान और उप प्रधान दोनों के पद रिक्त हों, या जब प्रधान और उप प्रधान दोनों कार्य करने में असमर्थ हों, तो विहित प्राधिकारी को ग्राम पंचायत के सदस्यों से एक बैठक आयोजित करने के लिए कहना चाहिए, और ऐसे सदस्यों को आपस में यह तय करना चाहिए कि नियमित चुनाव होने तक अंतरिम अवधि के लिए किस सदस्य को प्रधान के रूप में नामित किया जाना चाहिए, और ऐसे सदस्य को धारा 12-जे (2) के अंतर्गत स्थानापन्न प्रधान के रूप में नामित किया जाना चाहिए। ऐसी व्याख्या उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम में निहित लोकतांत्रिक सिद्धांत के अनुरूप होगी, और इससे संविधि भी संवैधानिक बनेगी।"

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



8. कुसुमा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: (उपर्युक्त) में, एक अन्य एकल न्यायाधीश पीठ ने श्रीमती उषा सिंह में दिए गए निर्णय पर विचार किया, लेकिन निम्नलिखित चर्चा के दृष्टिगत उसका पालन नहीं किया: -

"6. उपर्युक्त पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय ने श्रीमती उषा सिंह (उपर्युक्त) के वाद में यह भी टिप्पणी किया कि "शाब्दिक रूप से व्याख्या किए जाने पर उक्त प्रावधान विहित प्राधिकारी को इस प्रयोजन के लिए ग्राम पंचायत के किसी भी सदस्य को नामित करने का पूर्ण विवेक प्रदान करता है"। यद्यपि, यह राय देने के बाद कि उपर्युक्त ग्राम सभा और ग्राम पंचायत को साक्ष्य में लिया जा सकता है, न्यायालय ने प्रस्तर 7 में यह धारित किया है कि निस्संदेह ऐसी व्याख्या कुछ हद तक न्यायालय द्वारा विधायी कार्यों का प्रयोग है, और रतन चंद हीरा चंद बनाम अस्कर नवाजजंग के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किए गए उन टिप्पणी पर भरोसा किया है जो इस प्रकार हैं:

"विधायिका अक्सर बदलती जरूरतों और मूल्यों के साथ तालमेल बनाए रखने में विफल रहती है और यह उम्मीद करना भी यथार्थवादी नहीं है कि उसने सभी आकस्मिकताओं और संभावनाओं के लिए प्रावधान किया होगा। इसलिए, न्यायालयों के लिए उस कमी को भरने के लिए कदम उठाना न केवल आवश्यक है बल्कि बाध्यकारी भी है।

7. जब न्यायालय इस कार्य को करते हैं तो निस्संदेह वे न्यायिक रूप से विधान बनाते हैं। लेकिन यह एक ऐसा विधान है जो कानून के उद्देश्य को आगे बढ़ाने और समाज के लक्ष्यों को बढ़ावा देने के लिए, या इसे नकारात्मक रूप से कहें तो, कानून की विफलता या समाज के लक्ष्यों और मूल्यों की विकृति को रोकने के लिए, स्पष्ट रूप से उन्हें प्रत्यायोजित किया गया है।"

8. मेरी राय में, धारा 12-जे में कोई कमी नहीं है जिसे इस न्यायालय द्वारा भरा जाना आवश्यक हो। धारा 12-जे के उपखंड (2) का प्रावधान स्पष्ट है कि अस्थायी ग्राम प्रधान को विहित प्राधिकारी द्वारा नामित किया जाना है। पंक्तियों के बीच पढ़कर या अपनी स्वयं की राय को बल देने के लिए कुछ भी जोड़ा नहीं जा सकता है। विहित प्राधिकारी के पास इस अधिनियम के तहत किसी भी व्यक्ति को नामित करने की शक्ति है जिसे मनमाना नहीं कहा जा सकता है और रजिस्ट्रार ने अपने विवेक से कार्य किया है जो अधिनियम के तहत उसे प्रदान किया गया है।"

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



9. उदयवीर बनाम राज्य निर्वाचन आयोग उत्तर प्रदेश, 2008 एससीसी आनलाइन इला 2132 में, इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि: -

"4. संविधान के अनुच्छेद 243 के प्रावधानों के अंतर्गत पंचायती राज के लिए स्थापित लोकतंत्र की मूल अवधारणा पर विचार करते हुए, हमारा मत है कि प्रत्यर्थी संख्या 3, अर्थात् जिलाधिकारी, अलीगढ़ को ग्राम पंचायत के निर्वाचित सदस्यों की इच्छाओं का पता लगाना चाहिए था कि ग्राम प्रधान के नियमित चुनाव होने तक की अवधि के लिए स्थानापन्न प्रधान कौन होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यथाशीघ्र नए प्रधान का चुनाव करने का हर संभव प्रयास किया जाना चाहिए।"

10. उपर्युक्त निर्णय का अनुसरण इस न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ द्वारा पुष्पेन्द्र कुमार बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2010 एससीसी आनलाइन इला 3140 के बाद में किया गया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि: -

"9.धारा 12-जे के प्रावधान उदयवीर (उपर्युक्त) के वाद में एक खंडपीठ के समक्ष विचारार्थ आए थे और इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि स्थानापन्न प्रधान को नामित करते समय विहित प्राधिकारी को संबंधित ग्राम पंचायत के सदस्यों की बहुमत राय के अनुसार कार्य करना होगा। उपर्युक्त वाद में प्रतिपादित विधि संविधान (तिहत्तरवें) संशोधन अधिनियम 1992 द्वारा हमारे संविधान में जोड़े गए भाग IX के प्रावधानों की भावना के अनुरूप है, जो ग्राम स्तर पर पंचायतों के गठन का प्रावधान करता है, और ग्रामीणों को स्थानीय स्तर पर अपने मामलों का प्रबंधन स्वयं करने के लिए सशक्त बनाता है।"

10. श्यामू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य व अन्य: 2010 एससीसी आनलाइन इला 1250 में इस न्यायालय की एक और खंडपीठ ने श्रीमती उषा सिंह बनाम जिलाधिकारी, गोरखपुर व अन्य (उपर्युक्त) और कुसुमा देवी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य 1992 आर डी 337 (उपर्युक्त) में समन्वय पीठों द्वारा दिए गए विरोधाभासी निर्णयों का संज्ञान लिया और खंडपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि: -

"8. यह हमारे न्यायशास्त्र का एक मूलभूत सिद्धांत है कि यदि कोई विद्वान एकल न्यायाधीश किसी प्रावधान की व्याख्या पर दूसरे विद्वान न्यायाधीश द्वारा लिए गए विचार से

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



असहमत होता है, तो सामान्य प्रक्रिया में, विद्वान न्यायाधीश को इस वाद को एक वृहत्तर पीठ को संदर्भित करना चाहिए जब तक कि निर्णय का आधार स्पष्ट रूप से अलग न हो। न्यायिक निर्णयों में असंगति से बचने के लिए और प्राधिकारियों को न्यायालय द्वारा प्रावधानों की दी गई व्याख्या के संदर्भ में अपनी शक्तियों का प्रयोग करने में सक्षम बनाने के लिए न्यायिक अनुशासन को इस तरह के दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। हम लाभप्रद रूप से त्रिभुवनदास पुरुषोत्तमदास ठाकुर बनाम रतिलाल मोतीलाल पटेल, एआईआर 1968 एससी 372 के वाद में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ ले सकते हैं, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने अवलोकन किया है कि जहां एक विद्वान एकल न्यायाधीश दूसरे विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा लिए गए विचार से भिन्न विचार लेना चुनता है, तो वह साधारणतया मामले को एक खंडपीठ को संदर्भित करने के लिए बाध्य होता है। हम केवल निम्नलिखित अवलोकनों को उद्धृत कर सकते हैं:-

"... यह बार-बार धारित किया गया है कि एक उच्च न्यायालय का एकल न्यायाधीश साधारणतया समन्वय क्षेत्राधिकार वाले न्यायालयों और अपने न्यायालय की खंडपीठों व पूर्ण पीठों और इस न्यायालय के सही निर्णयों को स्वीकार करने के लिए बाध्य है। पूर्वोदाहरण को बाध्यकारी बनाने वाले नियम का कारण विधि में एकरूपता और निश्चितता सुनिश्चित करने की इच्छा में निहित है।"

9. यह सिद्धांत इस प्रस्ताव से प्रवाहित होता है कि यदि एक ही या उच्च न्यायालय के निर्णयों की अनदेखी की जाती है, भले ही वे सीधे लागू होते हों, किसी न्यायाधीश द्वारा उसके समक्ष उत्पन्न किसी वाद का निर्णय करते समय, इस विचार पर कि प्रत्येक न्यायाधीश अपने समक्ष उत्पन्न होने वाले कानून के प्रश्न पर अपना मनचाहा विचार लेने का हकदार है, तो कानून अपनी सभी उपयोगिता से वंचित हो जाएगा यदि इसे परस्पर विरोधी निर्णयों के कारणों से अनिश्चितता की स्थिति में डाल दिया जाए। इस संबंध में, लाला श्री भगवान बनाम श्री राम चंद, (1965) 3 एससीआर 218 में मुख्य न्यायमूर्ति गजेन्द्रगडकर का अवलोकन नीचे उद्धृत किया गया है:-

"इस बात पर जोर देना शायद ही आवश्यक है कि न्यायिक औचित्य और शिष्टाचार के विचारों की आवश्यकता है कि यदि किसी वाद की सुनवाई करने वाला विद्वान एकल न्यायाधीश इस विचार को अपनाने के लिए प्रवृत्त है कि उच्च न्यायालय के पूर्व निर्णयों पर, चाहे वह खंडपीठ का हो या एकल न्यायाधीश का, पुनर्विचार करने की आवश्यकता है, तो उसे एकल न्यायाधीश के

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



रूप में उस जांच में शामिल नहीं होना चाहिए, बल्कि प्रकरण को एक खंडपीठ को संदर्भित करना चाहिए या, किसी उचित वाद में, प्रश्न की जांच करने के लिए एक वृहत्तर पीठ का गठन करने में सक्षम बनाने हेतु संबंधित दस्तावेजों को मुख्य न्यायाधीश के समक्ष रखना चाहिए। ऐसे प्रकरणों से निपटने का यही उचित और पारंपरिक तरीका है और यह न्यायिक शिष्टाचार और औचित्य के स्वस्थ सिद्धांतों पर आधारित है।"

खंडपीठ ने यह निष्कर्ष निकाला कि: -

"14. हमने पहले ही अधिनियम की धारा 12-जे को उद्धृत किया है। यह धारा, यदि शाब्दिक रूप से पढ़ी जाए, तो अकेले विहित प्राधिकारी को ग्राम पंचायत के किसी सदस्य को नामित करने की शक्ति प्रदान करती है। विहित प्राधिकारी के लिए ग्राम पंचायत के सदस्यों से अनिवार्य रूप से परामर्श करने का कोई प्रावधान नहीं है। व्याख्या का स्थापित कानूनी सिद्धांत यह है कि, प्रथम दृष्टया, धारा की भाषा को उसके शाब्दिक अर्थ में पढ़ा जाए। केवल उस स्थिति में, जब शाब्दिक भाषा को पढ़ने से बेतुकापन उत्पन्न होता है या यह विधायिका के इरादे से भटकता है, तो न्यायालय विधायिका के इरादे के अनुरूप प्रावधान को पढ़ने के लिए हस्तक्षेप करता है। विधान का इरादा मुख्य रूप से प्रयुक्त भाषा से एकत्र किया जाना है, जिसका अर्थ है कि क्या कहा गया है और क्या नहीं कहा गया है, इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। परिणामस्वरूप, एक ऐसी व्याख्या, जिसके समर्थन के लिए शब्दों को जोड़ने या प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता होती है या जिसके परिणामस्वरूप शब्दों को अर्थहीन मानकर अस्वीकार कर दिया जाता है, से बचा जाना चाहिए। [(देखें श्याम किशोरी देवी बनाम पटना नगर निगम व अन्य, एआईआर 1966 एससी 1678, और ए.आर. अंतुले बनाम रामदास श्रीनिवास नायक व अन्य, (1984) 2 एससीसी 500)]।

विद्वान एकल न्यायाधीश, जिन्होंने श्रीमती उषा सिंह (उपर्युक्त) का निर्णय किया था, का यह मत था कि यह प्रावधान विहित प्राधिकारी को पूर्ण विवेक देता है और ऐसी व्याख्या प्रावधान को मनमाना और असंवैधानिक बना देगी क्योंकि इस बात पर कोई मार्गदर्शक सिद्धांत निर्धारित नहीं किया गया है कि विहित प्राधिकारी का विवेक कैसे और ग्राम पंचायत के किस सदस्य के पक्ष में प्रयोग किया जाना चाहिए। यह नहीं कहा जा सकता कि यह एक संभावित व्याख्या नहीं थी, इस बात पर विचार करते हुए कि इस धारा का उद्देश्य एक सदस्य को प्रधान के रूप में कार्य करने के लिए नामित करना है। नामित सदस्य को सामान्य रूप से अन्य सदस्यों और/या कम से

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



कम सदस्यों के बहुमत का विश्वास प्राप्त होना चाहिए ताकि ग्राम पंचायत के कार्य सुचारु रूप से आगे बढ़ सकें। दूसरा, यह दृष्टिकोण कम से कम वर्ष 1992 से क्षेत्र में कायम है। इन परिस्थितियों में, हमारी राय में, सदस्यों के साथ परामर्श की आवश्यकता को विधायिका के इरादे के विपरीत नहीं कहा जा सकता या उन शब्दों को जोड़ने वाला नहीं कहा जा सकता जो संविधि द्वारा प्रदान नहीं किए गए हैं। इसलिए, हम श्रीमती कुसुमा देवी में अपनाए गए विचार को खारिज करते हैं।

15. किसी गांव के प्रधान का पद चुनाव द्वारा भरा जाता है। विधायिका, इस स्थिति से अवगत होते हुए, अधिनियम के तहत एक विशिष्ट प्रावधान किया है, जिसमें विहित प्राधिकारी को एक सदस्य को प्रधान के कर्तव्यों का निर्वहन करने और शक्तियों का प्रयोग करने के लिए तब तक नामित करने की शक्ति प्रदान की गई है जब तक कि प्रधान के पद की रिक्ति भर न जाए। यह कवायद यह देखने के उद्देश्य से है कि पंचायत के कार्य सुचारु रूप से चलें और पद रिक्त होने तक उसमें कोई रिक्ति न रहे, क्योंकि पंचायत हमारी लोकतांत्रिक संरचना की बुनियादी इकाई है।

उस सीमा तक, उदयवीर (उपर्युक्त) में विद्वान खंडपीठ द्वारा की गई टिप्पणियों को, हमारी राय में, हमारे लोकतांत्रिक निकाय की इस मूल अवधारणा को प्रतिबिंबित करने वाला कहा जा सकता है कि जो लोग बहुमत में हैं, उनका नामित व्यक्ति चुना जाना चाहिए क्योंकि एक निर्वाचित प्रधान को सदस्यों का विश्वास प्राप्त होना चाहिए।"

(बल दिया गया)

12. विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि चूंकि उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम की धारा 12-जे में कोई ऐसा प्रावधान नहीं है, जो किसी आकस्मिक रिक्ति के स्थिति में प्रधान के कर्तव्यों का निर्वहन करने हेतु किसी व्यक्ति को नामित करने के लिए, विहित प्राधिकारी को इस उद्देश्य के लिए आयोजित बैठक में अभिव्यक्त सदस्यों के बहुमत के विचारों को ध्यान में रखना अनिवार्य बनाता हो, ऐसे में अदालतों द्वारा 'कैसस ओमिसस' (छूटे हुए मामले) की पूर्ति तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि स्पष्ट आवश्यकता न हो और जब तक कि इसके लिए कारण स्वयं संविधि के भीतर न पाया जाए। लेकिन साथ ही, 'कैसस ओमिसस' का आसानी से अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए और इस उद्देश्य के लिए संविधि के सभी भागों या धाराओं का एक साथ अर्थ लगाया जाना चाहिए और एक धारा के प्रत्येक खंड की व्याख्या उसके अन्य खंडों के संदर्भ में की जानी चाहिए ताकि किसी विशेष प्रावधान पर लगाया गया अर्थ अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



पूरे कानून को एक सुसंगत अधिनियमन बना सके। उन्होंने प्रस्तुत किया है कि उपरोक्त कारणों से, इस न्यायालय को पूर्वोक्त मामलों में तय किए गए बिंदु को एक वृहत्तर पीठ द्वारा पुनर्विचार के लिए संदर्भित करना चाहिए।

13. विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता ने **भारत संघ बनाम धर्मेन्द्र टेक्सटाइल प्रोसेसर्स: (2008) 13 एससीसी 369** के वाद में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि: -

"18. व्याख्या के दो सिद्धांत - एक 'कैसस ओमिसस' से संबंधित और दूसरा संविधि को समग्र रूप से पढ़ने के संबंध में, अच्छी तरह से स्थापित प्रतीत होते हैं। पहले सिद्धांत के तहत अदालत द्वारा 'कैसस ओमिसस' की पूर्ति तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि स्पष्ट आवश्यकता न हो और इसके लिए कारण संविधि के चार कोनों के भीतर ही न मिले, लेकिन साथ ही एक 'कैसस ओमिसस' का सरलता से अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिए और इस प्रयोजन के लिए किसी संविधि या धारा के सभी भागों की एक साथ व्याख्या की जानी चाहिए और किसी धारा के प्रत्येक खंड की व्याख्या उसके संदर्भ और अन्य खंडों के साथ की जानी चाहिए ताकि किसी विशेष प्रावधान पर लगाया गया अर्थ पूरे कानून को एक सुसंगत अधिनियमन बना सके। यह और भी अधिक तब होगा यदि किसी विशेष खंड की शाब्दिक व्याख्या स्पष्ट रूप से बेतुके या विसंगत परिणामों की ओर ले जाती है जो विधायिका का इरादा नहीं हो सकता था। डैन्कवर्ट्स, एल.जे. ने आर्टेमियो बनाम प्रोकोपियो (1965) 3 एएलएल ईआर 539 (एएलएल ईआर पृ. 544 1) में कहा, "एक अनुचित परिणाम उत्पन्न करने के इरादे को किसी संविधि पर आरोपित नहीं किया जा सकता यदि कोई अन्य व्याख्या उपलब्ध हो"। जहां शब्दों को शाब्दिक रूप से लागू करना "विधान के स्पष्ट इरादे को विफल करेगा और पूरी तरह से अनुचित परिणाम उत्पन्न करेगा", वहां हमें "शब्दों के साथ कुछ छेड़छाड़ करनी चाहिए" और इस प्रकार उस स्पष्ट इरादे को प्राप्त करना चाहिए तथा एक तर्कसंगत व्याख्या उत्पन्न करनी चाहिए। [लॉर्ड रीड द्वारा ल्यूक बनाम आईआरसी (1963) एसी 557 में जहां एसी पृ. 577 पर उन्होंने यह भी देखा: (एएलएल ईआर पृ. 664 1) "यह कोई नई समस्या नहीं है, यद्यपि हमारे प्रारूपण का स्तर ऐसा ही है।"

(उपरोक्त प्रस्तर को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के वेब पोर्टल पर उपलब्ध निर्णय के पाठ से उद्धृत किया गया है क्योंकि एससीसी में प्रस्तर नंबरिंग में त्रुटि है)

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



14. उदयवीर (उपर्युक्त) में प्रतिपादित और पुष्पेन्द्र कुमार (उपर्युक्त) तथा श्यामू (उपर्युक्त) में दो अलग-अलग खंडपीठों द्वारा पुष्ट की गई विधि का अध्ययन करने के पश्चात, मैं स्वयं को उपर्युक्त मामलों में खंडपीठों द्वारा प्रतिपादित विधि के प्रस्ताव से बाध्य पाता हूँ।

15. मैं विपक्षी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अनुराग शुक्ला द्वारा प्रस्तुत किए गए इस तर्क से सहमत हूँ कि एक एकल न्यायाधीश पीठ किसी खंडपीठ द्वारा दिए गए निर्णय को पुनर्विचार हेतु वृहत्तर पीठ को संदर्भित कर सकती है, परंतु ऐसा तभी किया जा सकता है जब एकल पीठ को खंडपीठ द्वारा लिए गए विचार की शुद्धता पर संदेह हो। तथापि, मैं वर्ष 1992 में बहुत पहले तय किए गए श्रीमती उषा सिंह बनाम जिलाधिकारी, गोरखपुर व अन्य (उपर्युक्त) के वाद में एकल न्यायाधीश पीठ द्वारा लिए गए विचार से सम्मानपूर्वक सहमत हूँ, जो विचार उदयवीर (उपर्युक्त) के प्रकरणों में खंडपीठों द्वारा भी लिया गया था और पुष्पेन्द्र कुमार (उपर्युक्त) में पुष्ट किया गया और अंततः श्यामू (उपर्युक्त) में समझाया गया और स्थापित किया गया तथा मुझे एक वृहत्तर पीठ द्वारा इस मुद्दे पर पुनर्विचार के लिए संदर्भ देने का कोई आधार नहीं मिलता है।

16. यह भी विधि का एक स्थापित सिद्धांत है कि लंबे समय से स्थापित पूर्वोदाहरणों में साधारणतया हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। यहां तक कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय भी साधारणतया राज्य विधानों के संबंध में उच्च न्यायालयों के लंबे समय से स्थापित पूर्वोदाहरणों में हस्तक्षेप नहीं करता है।

17. दत्तात्रेय गणेश कुलकर्णी बनाम अप्पा तुकाराम मुड़े: (1998) 8 एससीसी 717 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि: -

"वे निर्णय जहां तक उस विषय पर स्थानीय विधान की व्याख्या का संबंध है, घूर्णीत निर्णय की प्रकृति में हैं। दशकों से प्रचलन में बने रहने के कारण, ये अब हमें उस भिन्न व्याख्या को देने का औचित्य सिद्ध नहीं करेंगे जिसकी मांग अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई है।"

18. श्री संत सद्गुरु जनार्दन स्वामी (मोड़नगिरी महाराज) सहकारी दुग्ध उत्पादक संस्था बनाम महाराष्ट्र राज्य: (2001) 8 एससीसी 509 में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने फिर यह अभिनिर्धारित किया कि:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



"7. ...राज्य अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या पर उच्च न्यायालय का यह सुसंगत विचार होने के कारण, इसे तब तक परेशान करने की आवश्यकता नहीं है जब तक कि यह न दिखाया जाए कि उच्च न्यायालय का ऐसा विचार स्पष्ट रूप से गलत है या अधिनियम में संशोधन या कानून की किसी बाद की घोषणा के आलोक में एक अच्छा कानून नहीं रह गया है।"

19. पूर्वोक्त चर्चा के दृष्टिगत, मैं एक वृहत्तर पीठ द्वारा पुनर्विचार के लिए उपरोक्त सुस्थापित मुद्दे को संदर्भित करने हेतु विपक्षी संख्या 4 के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुरोध को स्वीकार करने में असमर्थ हूँ और विपक्षी संख्या 4 के विद्वान अधिवक्ता के इस अनुरोध को अस्वीकार किया जाता है।

20. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता के इस अन्य तर्क के संबंध में कि पंचायत राज अधिनियम की धारा 12-जे के तहत प्रधान की आकस्मिक रिक्ति को भरते समय भी, आरक्षण के सिद्धांत का पालन किया जाना चाहिए, **बृज रानी सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य: 2000 एससीसी आनलाइन इला 1249 : 2000 इला एलजे 1854** के वाद में इस न्यायालय की एक समन्वय पीठ के निर्णय में निम्नलिखित कहा गया था: -

"25. ...यह स्पष्ट है कि प्रधान के कार्यालय में अस्थायी रिक्ति को भरने के लिए की गई व्यवस्था, जो प्रधान को हटाए जाने सहित कुछ कारकों के कारण हो सकती है, का यह अर्थ नहीं होगा कि प्रधान का पद किसी ऐसे व्यक्ति या सदस्य या उप-प्रधान द्वारा भरा जाए जो अन्यथा किसी विशेष आरक्षित निर्वाचन क्षेत्र में प्रधान की सीट के लिए चुनाव लड़ने हेतु पात्र नहीं है या पात्र नहीं था। एक अस्थायी रिक्ति के दौरान यह केवल एक साधारण व्यवस्था होने के कारण, इसका कोई अपवाद नहीं लिया जा सकता है और इसे अधिनियम के तहत बनाए गए और नियमावली के तहत विहित आरक्षण संबंधी प्रावधानों के अल्पीकरण में नहीं पढ़ा जा सकता है...."

21. इसलिए, प्रधान की आकस्मिक रिक्ति के विरुद्ध प्रधान के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम की धारा 12-जे के अंतर्गत ग्राम पंचायत के किसी सदस्य का नामांकन करते समय भी आरक्षण का नियम लागू किया जाना चाहिए।

22. पूर्वोक्त चर्चा के दृष्टिगत, मेरा यह सुविचारित मत है कि जिला पंचायत राज अधिकारी, सीतापुर द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 26.06.2025, जिसके द्वारा जिला पंचायत राज अधिकारी ने विपक्षी संख्या 4 को अगले आदेशों तक, या प्रधान नियुक्त होने तक, ग्राम पंचायत,

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



सिकौहा, विकास खंड रेउसा, जिला सीतापुर के ग्राम प्रधान के कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए नामित किया है, विधि में पोषणीय नहीं है और उसे रद्द किया जाता है। जिलाधिकारी/जिला पंचायत राज अधिकारी, सीतापुर को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय में की गई टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए, स्थानापन्न प्रधान की एक नई नियुक्ति करें।

23. उपरोक्त टिप्पणियों/निर्देशों के साथ याचिका स्वीकार की जाती है।

(न्यायमूर्ति सुभाष विद्यार्थी)

05 फरवरी, 2026

प्रदीप/-

Translated Version. Not for Legal Use.

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।